THE STUDY
An Institute for IAS

आधुनिक भारत का इतिहास

भाग-1

मणिकांत सिंह

अध्याय 1 आधुनिक भारत का इतिहास लेखन

आधुनिक भारतीय इतिहास के लेखन में तीन बुनियादी दृष्टिकोण उभरकर सामने आए। ये हैं-साम्राज्यवादी व नवसाम्राज्यवादी, राष्ट्रवादी और मार्क्सवादी।

साम्राज्यवादी दृष्टिकोण सबसे पहले लार्ड मिन्टो आदि वायसरायों की उद्घोषणाओं में उभर कर सामने आया। पहली बार इसे वैलेन्टाइल शिरोल, रॉलेट समिति की रिपोर्ट, वर्नी लॉभेट एवं मॉन्टेग्यू-चेम्सफोर्ड की रिपोर्ट आदि के द्वारा सुनियोजित रूप में रखा गया। सबसे पहले एक अमेरिकी विद्वान ब्रूस टी. मैककुली (Bruce T. Mc. Cully) द्वारा इसे सैद्धान्तिक आधार प्रदान किया गया (1940 ई.)। आगे पर्सिवल स्पीयर, रेगिनाल्ड कूपलैंड, अनील सील, जे. ए. गलहर आदि ने इस दृष्टिकोण को अपनाया परन्तु कूपलैंड और स्पीयर ने इसके उदारवादी रूप को प्रस्तुत किया। अनील सील और उसके अनुगामियों ने 1968 के पश्चात् साम्राज्यवादी दृष्टिकोण का वह अनुदारवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया जिसे लोकप्रिय रूप में कैंब्रिज स्कूल के नाम से जाना जाता है।

इतिहास लेखन का **कैम्ब्रिज स्कूल** भारत में आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक ढाँचा के रूप में उपनिवेशवाद के अस्तित्व को नकारता है। कैम्ब्रिज इतिहास लेखकों ने उपनिवेशवाद को केवल विदेशी शासन के रूप में देखा। साथ ही वे यह भी नहीं मानते कि भारत के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक विकास के लिए उपनिवेशवादी पद्धति का अंत आवश्यक था। अत: इनके द्वारा भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की व्याख्या इस तथ्य की अस्वीकृति पर आधारित थी कि भारतीय जनता एवं औपनिवेशिक शासक के हितों में किसी प्रकार का मौलिक विरोधाभास था और यह भी कि इस मौलिक विरोधाभास ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के विकास में किसी प्रकार की भूमिका निभायी। अत: वे साम्राज्यवाद के विरूद्ध भारतीय राष्ट्रवाद के संघर्ष को एक छद्म संघर्ष मानते हैं।

कैंब्रिज इतिहासकार इस बात से सहमत नहीं हैं कि भारत एक राष्ट्र बनने की प्रक्रिया में था बल्कि वे मानते हैं कि जिसे भारत के नाम से जाना जाता है वह वस्तुत: विभिन्न धर्मों, जातियों, समुदायों और हितों का समूह था। भारत विभिन्न पहचानों, यथा– ब्राह्मण, गैर-ब्राह्मण, हिन्दू-मुस्लिम, आर्य और भद्रलोक आदि पहचानों में विभाजित है। अनिल सील कहते हैं कि भारतीय राजनीति इन्हीं हित-समूहों के इर्द-गिर्द चक्कर काटती थी। उनके विचार में यह तथ्य भारतीय राष्ट्रवाद को चीन, जापान, मुस्लिम देशों और अफ्रीका के राष्ट्रवाद से अलग करता है।

फिर सवाल यह पैदा होता है कि अगर राष्ट्रीय आंदोलन साम्राज्यवाद के विरूद्ध भारतीय जनता के हितों का प्रतिनिधित्व नहीं करता तो किसके हितों का प्रतिनिधित्व करता था? इसके जबाव में कैंब्रिज इतिहासकारों का कहना है कि यह कुलीन समूहों के हितों का प्रतिनिधित्व करता था। भारतीय राष्ट्रवाद पर अनील सील, बंगाल पर अमेरिकी इतिहासकार ब्रुमफील्ड एवं कुछ समय तक गाँधी के उदय पर ज्यूडिथ ब्राउन के लेखन ने ऐसा चलन चलाया जिसमें राष्ट्रवाद की व्याख्या असमान विकास एवं सामान्यत: जाति पर आधारित, प्रान्तीय अभिजात समूहों की प्रतियोगिता के परिप्रेक्ष्य में की जाती है। ये अभिजात समूह थे-बंगाली भद्रलोक, चितपावन ब्राह्मण और हिन्दी भाषी अथवा आंध्र के क्षेत्र में उप-अभिजात समूह। उनके विचार में राष्ट्रवाद रोजगार संबंधी कुंठा जैसी अत्यंत संकीर्ण

एवं स्वार्थी भौतिक अभिप्रेरणाओं से परिचालित था। अनील सील का मानना है कि राष्ट्रीय आंदोलन ब्रिटिश अनुकम्पा प्राप्त करने के लिए एक अभिजात गुट का दूसरे अभिजात गुट के विरूद्ध संघर्ष था और राष्ट्रीय आंदोलन के उद्‌भव एवं विकास में ब्रिटिशों की मुख्य भूमिका यह थी कि ब्रिटिश शासन ने पारस्परिक ईर्ष्या एवं संघर्ष को तीव्र कर दिया। उसने नये क्षेत्रों एवं संस्थाओं का सृजन किया जिसके परिणामस्वरूप भारतीयों के बीच पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा और तीव्र हो गया। सील, गलहर और उनके अनुयाइयों ने उस आधार को भी स्पष्ट किया जिस पर इन अभिजात गुटों का निर्माण हुआ था। इन लेखकों ने ब्रिटिश इतिहासकार लेविस नेमियर के दृष्टिकोण को ही अपनाया और इस मत की पुष्टि की कि संरक्षक-संरक्षित (Patron -client) संबंधों के आधार पर इन अभिजात गुटों का निर्माण हुआ। उन्होंने यह सिद्धांत आरोपित करने की कोशिश की कि चूंकि ब्रिटिश ने क्षेत्रीय और प्रांतीय स्तर पर प्रशासनिक, आर्थिक और राजनीतिक शक्तियों का विस्तार किया, तथा क्षेत्रीय कुलीनों ने उन संरक्षक और संरक्षितों को जिनके हितों का वे संवर्द्धन करते थे, संगठित कर क्षेत्रीय स्तर पर राजनीति प्रारंभ की। अतः भारतीय राजनीति की शुरूआत इसी संरक्षक-सरंक्षित संबंधों के आधार पर हुआ। क्रमिक रूप में बड़े नेताओं का उद्‌भव हुआ और इन नेताओं ने दलालों के रूप में क्षेत्रीय कुलीनों की राजनीति में समन्वय स्थापित किया। अतः कालान्तर में अखिल भारतीय दलालों का उद्‌भव हुआ। सफलतापूर्वक स्व-हितों की संवृद्धि के लिए अखिल भारतीय दलालों को प्रांतीय स्तर के दलालों की जरूरत थी और क्षेत्रीय स्तर के दलालों ने इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

इस तरह हम देखते हैं कि कैम्ब्रिज इतिहासकारों की दृष्टि प्रारंभ से ही दूषित रही। हाँ! इन इतिहासकारों के शोधों का फायदा अन्य इतिहासकारों ने उठाया।

दूसरा महत्वपूर्ण दृष्टिकोण राष्ट्रवादी इतिहासलेखन है। ब्रिटिश शासन काल में इस दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व लाजपतराय, ए. सी. मजुमदार, पट्टाभि सीतारमैया, आर. जी. प्रधान, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, सी. एफ. एन्ड्रयूज, गिरिजा मुखर्जी, आदि कर रहे थे। राष्ट्रवादी इतिहासकार उपनिवेशवाद के शोषक चरित्र की समझ प्रदर्शित करते हैं। किंतु कुल मिलाकर वे महसूस करते हैं कि राष्ट्रीय आंदोलन राष्ट्रीयता या स्वतंत्रता के विचार के प्रसार एवं उसके मूर्तिकरण का परिणाम था। राष्ट्रवादी इतिहासकारों की दृष्टि में राष्ट्रीय आंदोलन में जनता की भागीदारी बहुत प्रभावपूर्ण एवं स्वाभाविक थी, क्योंकि मूलतः सभी भारतीयों के हित सदैव विदेशी सत्ता के विरोधी ही थे, केवल चमत्कारी नेता की कमी थी। परन्तु उनकी सबसे बड़ी कमजोरी यह रही कि उन्होंने वर्ग या जाति के संदर्भ में भारतीय समाज के आन्तरिक विरोधाभास को नजरअंदाज कर दिया है। उन्होंने इस तथ्य की उपेक्षा की है कि राष्ट्रीय आंदोलन सभी भारतीयों के हितों का समान रूप से प्रतिनिधित्व नहीं करता था। वे प्रायः तथ्यों की व्याख्या में वही दृष्टिकोण अपनाते देखे जाते हैं जो राष्ट्रीय आंदोलन के दक्षिणपंथी रूझान वाला समूह अपनाता है और उसे वह राष्ट्रीय आंदोलन का ढंग बताने की भूल करते हैं।

मार्क्सवादी लेखन :-

आगे मार्क्सवादी इतिहास-लेखन का उद्‌भव हुआ। इसकी आधारशिला रजनीपाम दत्त, एम. एन. राय, ए. आर. देसाई आदि ने रखी। साम्राज्यवादी लेखन के विपरीत मार्क्सवादी लेखक स्पष्ट रूप से आरंभिक विरोधाभास और एक बनते हुए राष्ट्र की प्रक्रिया की समझ प्रदर्शित करते हैं। उसी तरह राष्ट्रवादी इतिहास लेखन के विपरीत मार्क्सवादी इतिहासकार भारतीय समाज के आन्तरिक विरोधाभास को भी स्पष्ट करते हैं परन्तु उनमें से अधिकतर और विशेषकर रजनीपाम दत्त, प्रारंभिक साम्राज्यवाद-विरोधी विरोधाभास और द्वितीयक

NOTES

आन्तरिक विरोधाभास के प्रति अपने रुख में एकीकरण स्थापित नहीं कर पाते और साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष को वर्ग या सामाजिक संघर्ष का दर्जा देते हैं। वे राष्ट्रीय आंदोलन को संरचनाबद्ध बुर्जुआ आंदोलन मानते हैं। वे राष्ट्रीय आंदोलन के वर्गीय चरित्र की व्याख्या भी संघर्ष की विधि एवं प्रकार के संदर्भ में अर्थात् इसके अहिंसक चरित्र के संदर्भ में करते हैं तथा इस संदर्भ में भी करते हैं कि नेतृत्व ने कैसे पीछे हटने की युक्ति एवं समझौते की नीति अपनायी। कुल मिलाकर मार्क्सवादी लेखक भी एक संतोषप्रद विकल्प देने में असफल रहे क्योंकि आमतौर पर इनका लेखन अति सामान्य होता था और कभी-कभी इनका वर्ग-विश्लेषण कुछ अधिक ही यांत्रिक हो उठता था।

आगे कुछ इतिहासकार, जो मार्क्सवादी परंपरा के अन्तर्गत ही लिखते रहे और जिनमें विपिन चन्द्र प्रमुख हैं, अधिक संतुलित दृष्टिकोण अपनाते देखे जाते है। वे औपनिवेशिक भारत में विरोधाभास का स्वरूप, प्रारम्भिक और द्वितीयक विरोधाभाषों में संबंध, राष्ट्रीय आंदोलन का वर्गीय चरित्र, बुर्जुआ एवं अन्य सामाजिक वर्गों के बीच संबंध, भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस और इसके नेतृत्व आदि पर प्रकाश डालते हैं।

किंतु अपनी तमाम सीमाओं के बीच मार्क्सवादी दृष्टिकोण या परंपरा ही ऐसी है जिसमें कृषक प्रतिरोध के बहुसंख्यक अध्ययन आते हैं। साम्राज्यवादी या नव-साम्राज्यवादी संप्रदाय इस पक्ष के बारे में लगभग पूरी तरह खामोश रहा और राष्ट्रवादी का योगदान बहुत ही कम रहा।

सबाल्टर्न या उपाश्रयवादी इतिहास लेखन :-

लेकिन हाल में इतिहासलेखन का एक नया संप्रदाय सामने आया है जिसे लोकप्रिय शब्दावली में उपाश्रयवादी (सबाल्टर्न) संप्रदाय कहा जाता है। इसमें पहले के समस्त इतिहास लेखन को ऐसा 'अभिजनवादी' इतिहासलेखन कह कर रद्द कर दिया गया है जिसके पास जनता के इतिहास की समझ में योगदान देने को कुछ भी नहीं है। इसमें इस पुराने 'तंगनजर' और 'अभिजनवादी' इतिहास लेखन की जगह उस चीज को स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है जिसे नया "उपाश्रयवादी" या जनता का इतिहासलेखन कहा गया है।

सबाल्टर्न इतिहास लेखन के संस्थापक 'रंजीत गुहा' को माना जाता है। 1980 में यह दृष्टिकोण स्थापित हुआ। आगे इस दृष्टिकोण को स्थापित करने में 'पार्थ चटर्जी' ने भूमिका निभाई। भारत में ज्ञानेन्द्र पाण्डेय, उर्वशी बुटालिया, रितु मेनन आदि इस दृष्टिकोण के प्रवर्त्तक रहे हैं। एक आधुनिक विद्वान सुमित सरकार भी इस दृष्टिकोण के प्रभाव में लिखते रहे हैं।

विशेषताएँ: -

1. इस दृष्टिकोण के अनुसार चाहे वो साम्राज्यवादी इतिहास लेखन हो अथवा मार्क्सवादी या राष्ट्रवादी इतिहासलेखन, सभी एक समान दोष के शिकार हैं। ये सभी दृष्टिकोण राष्ट्रीय आंदोलन में नेताओं की भूमिका को अधिक करके दर्शाते हैं जबकि किसी भी आंदोलन में जनसामान्य नेतृत्व को दिशा देता न कि नेतृत्व जनसामान्य को।
2. इन्होने इतिहास के विश्लेषण में नेतृत्व की भूमिका की जगह सामाजिक प्रक्रिया पर अधिक बल दिया है।

योगदान: - इस दृष्टिकोण ने जनजाति और किसान आंदोलन के अध्ययन में विशेष योगदान दिया है तथा प्रत्येक आंदोलन में निचले स्तर के दबाव को दर्शाने का प्रयास किया है।

□□□

अध्याय 2 यूरोपीय व्यापार का उद्‌भव तथा विकास

प्राचीन काल से ही भारत के व्यापारिक संबंध यूरोप के साथ कायम रहे थे। भारत की समृद्धि की कहानी विश्व के विभिन्न क्षेत्रों के लोगों को आकर्षित करती रही थी। प्राचीन काल में ग्रीक तथा रोमन लोगों ने भी भारत के साथ व्यापारिक संबंध कायम रखे थे। मसाले, रेशम, नील, सूती वस्त्र आदि वस्तुओं की यूरोप में अत्यधिक मांग थी। यही वजह है कि पूरब तथा पश्चिम के बीच व्यापारिक गतिविधियाँ सदा लाभदायक मानी जाती रही।

इस्लाम के उद्‌भव तथा बिजेन्टीयन साम्राज्य के पतन के पश्चात् भूमध्य सागरीय क्षेत्र अरब व्यापारियों के नियंत्रण में आ गया। अतः अब यूरोपीय व्यापारियों का पूर्वी विश्व से प्रत्यक्ष संबंध नहीं रह गया। अतः एशियाई क्षेत्र के व्यापार पर अरब व्यापारियों का तथा यूरोपिय क्षेत्र के व्यापार का वेनिस तथा जेनोआ (इटली) के व्यापारियों का कब्जा हो गया। इन व्यापारियों के द्वारा पूर्वी वस्तुओं की बिक्री पर एकाधिकार कायम कर लिया गया। पूर्वी वस्तुओं में मसाले अत्यधिक महत्वपूर्ण थे। उस समय मसाले की जरूरत मांस को सुरक्षित करने के लिए की जाती थी। अतः यूरोपिय देशों को इटालियन व्यापारियों से अत्यधिक मूल्य पर मसाले खरीदनी होती थी। स्वाभाविक था कि यूरोपीय देशों में इटालियन व्यापारिक एकाधिकार के विरूद्ध प्रतिक्रिया आरंभ हो गयी थी। इस तथ्य ने भौगोलिक अन्वेषण तथा नई दुनिया की खोज की प्रक्रिया को प्रोत्साहन दिया। इस प्रक्रिया में पहल पुर्तगाल तथा स्पेन के राजतंत्रों के द्वारा की गई। इसका परिणाम था सर्वप्रथम अमेरिका की खोज। क्रिस्टोफर कोलम्बस ने, जो एक इटालियन नाविक था तथा जिसे स्पेन की रानी इसाबेला का समर्थन प्राप्त हुआ था, 1492 में अमेरिका का पता लगाया। उसने पश्चिमी मार्ग से पूरब के मसाले द्वीपों पर पहुँचने का प्रयास किया था। कोलम्बस तो यही सोचकर मर गया था कि उसने पूर्वी दुनिया का पता लगा लिया है। उसके अधूरे काम को आगे पुर्तगाली नाविकों ने पूरा किया। वैसे कोलम्बस की खोज भी विश्व इतिहास की अति महत्वपूर्ण घटना थी, आगे यह बात सिद्ध हो गई क्योंकि अमेरिका से प्राप्त कीमती धातु के बिना पूर्वी विश्व के साथ व्यापार संभव नहीं था। पुर्तगाली नाविकों ने अफ्रीका के पश्चिमी तट से भारत की ओर बढने का प्रयास किया। इस क्रम में बार्थी लोमियो डियाज ने उतमाशा अन्तरीप की खोज की तथा आगे 1498 में वास्कोडिगामा भारत के पश्चिमी तट कालीकट पहुँच गया। वास्कोडिगामा के कालीकट आगमन के साथ भारत तथा यूरोप के बीच संबंधों का एक नया अध्याय आरंभ हुआ।

वैकल्पिक मार्ग की खोज के परिणामस्वरूप भारत तथा यूरोप के बीच सीधा सामुद्रिक संबंध कायम हो गया। अतः उचित यातायात साधानों की कमी से उत्पन्न वह तकनीकी बाधा समाप्त हो गई जो लाल सागर के मार्ग से व्यापार में कायम थी। दूसरे शब्दों में, लाल सागर एवं भूमध्य सागर के बीच स्वेज नहर निर्माण से पूर्व सीधा जुड़ाव नहीं था अपितु थोड़ा भूमि मार्ग भी पार करना होता था। यह एक बड़ी बाधा थी क्योंकि व्यापारिक सामग्री को एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में ले जाने के लिए बड़ी संख्या में भारवाहक पशुओं की जरूरत होती थी। किन्तु उतमाशा अन्तरीप के रास्ते से सीधा सामुद्रिक मार्ग कायम हो जाने से यह बाधा दूर हो गई।

भौगोलिक खोज के परिणामस्वरूप एक व्यापारिक संरचना कायम हुई, जो पश्चिम में अमेरिका से लेकर पूरब में चीन तथा दक्षिण-पूर्व में एशिया तक फैल गई। आगे अमेरिका से प्राप्त कीमती धातु के कारण यूरोपीय कम्पनियों के द्वारा एशियाई व्यापार का संचालन संभव हो सका।

किन्तु हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि इटालियन मसाला व्यापार के एकाधिकार को

NOTES

चुनौती भौगोलिक अन्वेषण का महज एक प्रेरक कारक था। इसके लिए कुछ अन्य कारक भी उत्तरदायी थे। यही वह काल था जब यूरोप आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तनों की प्रक्रिया से गुजर रहा था। इस काल में सामंती ढॉचा टूट रहा था तथा व्यावसायिक पूँजीवाद का उदभव हो रहा था। पश्चिमी यूरोप में सामंतवाद के पतन के साथ-साथ राष्ट्रीय राज्यों का उद्‌भव को रहा था। यूरोप के महात्वाकांक्षी शासकों के द्वारा वाणिज्यवादी नीति को प्रोत्हासन दिया जा रहा था। वाणिज्यवादी नीति का बल कीमती धातुओं के संग्रह तथा निर्यात के प्रोत्साहन पर था। इस उद्देश्य से प्रेरित होकर यूरोप के महत्वाकांक्षी शासक समुद्र पार विस्तार पर बल दे रहे थे। फिर, वही यह काल है जब यूरोप पुनर्जागरण तथा प्रोटेस्टेन्ट आन्दोलन की प्रक्रिया से गुजर रहा था। पुनर्जागरण द्वारा प्रेरित खोजी दृष्टि ने भौगोलिक खोज एवं वैज्ञानिक अन्वेषण को बल प्रदान किया। धर्मसुधार आंदोलन ने विरोधी पंथो के लोगों में एक प्रकार के धार्मिक उत्साह को प्रेरित किया। रोमन कैथोलिक एवं प्रोटेस्टेन्ट दोनों प्रसार के लिए इच्छुक और संकल्पित थे। हमें यह याद रखना चाहिए कि वास्कोडिगामा की साहसिक यात्रा व्यापारिक उद्देश्य के साथ-साथ एक मिशनरी उद्देश्य से भी प्रेरित थी। इस काल में चूंकि यूरोपीय अर्थव्यवस्था का प्रसार हो रहा था अत: यरोप में पूरब से आने वाली वस्तुओं की मांग बढ रही थी। अंत में नवीन दृष्टिकोण के उद्‌भव ने तकनीकी विकास को भी प्रोत्साहन दिया। इस काल में नौपरिवहन के क्षेत्र में नवीन तकनीकी विकास देखा गया, उदाहरण के लिए एस्ट्रोलैब, दिशा सूचक यंत्र आदि का विकास। इस प्रकार, नवीन तकनीकी विकास के कारण नौपरिवहन गतिविधियों में तीव्रता आयी।

यूरोपीय कम्पनियाँ

वास्कोडिगामा ने जब मालाबार तट पर लंगर डाला तो अरब व्यापारियों के द्वारा पुर्तगीजो का विरोध किया गया, किंतु कालीकट के शासक जमोरिन ने पुर्तगीज व्यापारियों को संरक्षण दिया। जब वास्कोडिगामा अपने जहाजों में मसाले लेकर लौटा तो ये मसाले यूरोप में 60 गुने अधिक दाम में बिके। इस तथ्य ने पूर्वी मसाले व्यापार के आर्थिक महत्व को उजागर कर दिया।

डी० एल्मिडा के अधीन भारत में पुर्तगीज गर्वनर का पद स्थापित किया गया। डी० एल्मिडा के काल में पुर्तगीजों का संघर्ष ओरमुज के क्षेत्र पर कब्जा करने के लिए मुस्लिम शक्तियों से हुआ। अंत में 1508 में पुर्तगीज ओरमुज पर कब्जा करने में सफल रहे। डी० एल्मिडा के अधिकारी अलबुर्बक ने 1510 में बीजापुर से गोवा छीन लिया। इस प्रकार उसने पुर्तगीज की क्षेत्रीय राज्य की आधारशिला रखी। फिर पुर्तगीजों ने भारतीय उपमहाद्वीप के अन्य क्षेत्रो में भी अपनी फैक्ट्रियाँ स्थापित करना आरंभ किया। अत: उन्होंने दक्षिण-पूर्व एशिया की तरफ कदम बढाया तथा इण्डोनेशिया में भी अपने किलेबंद फैक्ट्री की स्थापना की। इस प्रकार उन्होंने पश्चिम ओरमुज से पूरब में मलक्का तथा दक्षिण में हिन्द महासागर तक अपना वर्चस्व स्थापित किया। पुर्तगीज में समुद्री साम्राज्य को एस्तादो द इण्डिया कहा जाता था।

पुर्तगीजों ने एशिया में प्रचलित खुले समुद्र की नीति को धक्का पहुँचाया तथा सामुद्रिक गतिविधियों पर पूरा नियंत्रण स्थापित करने का प्रयत्न किया। पुर्तगीज व्यापारियों ने मसाले, घोड़े, गोला-बारूद तथा कुछ अन्य सामग्रियों के व्यापार पर एकाधिकार स्थापित करने का प्रयत्न किया। सबसे बढकर उन्होंने कार्तेज पद्धति की शुरूआत की। यह एक प्रकार का पारपत्र होता था जो भारतीय व्यापारी पुर्तगीजों से प्राप्त करते थे, तभी वे अपने जहाज समुद्र में ले जा सकते थे अन्यथा उनके जहाज को युद्ध

का माल समझकर लूट लिया जाता। फिर पुर्तगीजों ने भारत में धार्मिक कट्टरता भी दिखाई तथा लोगों को जबरन ईसाई धर्म में धर्मांतरित करने का प्रयास किया। इसके अतिरिक्त पुर्तगीजों ने व्यापार के साथ लूटपाट की नीति जारी रखी। अत: पुर्तगीजों के इस नीति के विरूद्ध प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक था।

पुर्तगीजों का व्यापारिक एकाधिकार तब टूटा जब 17वीं सदी के आरंभ में डच एवं ब्रिटिश कम्पनी का आगमन हुआ। इस तथा ब्रिटिश कम्पनी अपने स्वरूप में भी पुर्तगीज कंपनी से अलग थी। पुर्तगीज कंपनी जहाँ राजकीय एकाधिकार में काम करती थी वहीं डच और ब्रिटिश कंपनी संयुक्त उद्यम कंपनी थी, जिन्हे हम आज की बहुराष्ट्रीय कंपनी का पूर्वज मान सकते हैं। फिर इन कंपनियों को अपनी सरकारों का समर्थन प्राप्त था। सरकार से ही इन्हें व्यापारिक एकाधिकार का चार्टर मिलता था तथा आवश्यकता पड़ने पर इन्हें सरकार से नौसैनिक सहायता भी प्राप्त होती थी। आरंभ में डच कंपनी की तरह ब्रिटिश कंपनी भी पूरब के मसाले व्यापार पर एकाधिकार स्थापित करने के लिए प्रयासरत थी, यही वजह है कि ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की पहली यात्रा दक्षिण-पूर्व एशिया के लिए हुई थी न कि भारत के लिए। डच तथा ब्रिटिश कंपनी ने पुर्तगीज कंपनी को उन्हे अधिकांश भू-भाग से वंचित कर दिया गया। पुर्तगीजों ने ओरमुज का क्षेत्र ब्रिटिश के हाथों गंवा दिया तो मलक्का क्षेत्र डचों के हाथों, और फिर अंत में पुर्तगीज भारत में गोवा, दमन एवं दीव में सिमटकर रह गये, जहाँ से स्वतंत्र भारत की सरकार द्वारा 1961 में बलपूर्वक बाहर किये गए। वस्तुत: पुर्तगाल एक छोटा सा देश था। उसके पास संसाधन भी सीमित थे। पूर्वी व्यापार का भी वास्तविक लाभ पुर्तगाल को न ही मिल पाता था क्योंकि पुर्तगाल, मध्यस्थ और बिचौलियों से प्राप्त कर्ज के आधार पर इस व्यापार को आगे बढा रहा था। इसलिए इस व्यापार का मुनाफा इन बिचौलियों को प्राप्त होता। यही वजह है कि पुर्तगीज ब्रिटिश और डच शक्ति का मुकाबला नहीं कर सके।

तत्पश्चात् पूर्वी मसाले व्यापार पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए डच एवं ब्रिटिश शक्ति के बीच प्रतिस्पर्धा हुई। अंत में डच इण्डोनेशिया में स्थापित हो गए तथा ब्रिटिश भारत में। ब्रिटिश सरकार को भारत में पांव जमाने में कठिनाई हुई थी क्योंकि उन्हे पुर्तगीजों के विरूद्ध मुगल शासक का विश्वास जीतना पडा, किंतु भारतीय उपमहाद्वीप के महत्वपूर्ण क्षेत्रों में ब्रिटिश फैक्ट्रियाँ स्थापित हो गई। भारत में ब्रिटिश और डच कंपनियों का सबसे बड़ा योगदान है भारत में मसाले की जगह सूती वस्त्र तथा रेशमी वस्त्र के निर्यात को प्रोत्साहन देना। इन्होने भारत से बाहर सूती वस्त्र तथा रेशमी वस्त्र के लिए एक बड़ा बाजार प्राप्त किया। इन्हीं दोनों कंपनियों के द्वारा भारत में 17वीं सदी में एक व्यापारिक क्रांति लाई गई। डच एशिया के अन्तरक्षेत्रीय व्यापार में भारतीय वस्त्रों का उपयोग करते थे, उदाहरण के लिए, वे भारत के कोरोमंडल तट से बेहतर किस्म के सूती वस्त्र का निर्यात करते थे तथा उसके बदले डच दक्षिण-पूर्व एशिया से मसाले की उगाही करते थे। फिर वे बंगाल से कच्चे रेशम एवं अफीम भी प्राप्त करने लगे। उसी प्रकार ब्रिटिश कंपनी के द्वारा 17वीं सदीं में बड़ी मात्रा में केलिको (वस्त्र) का निर्यात किया गया।

यूरोपीय कंपनियों में सबसे अंत में फ्रांसीसी आये। फ्रांसीसी कम्पनी की स्थापना लुई 14वें के प्रधानमंत्री कोल्बर्ट द्वारा 1664 में किया गया था। भारत में 1667 में इसका आगमन हुआ तथा इसने अपनी पहली फैक्ट्री सूरत में स्थापित की। तत्पश्चात मसूलीपट्टम, पांडिचेरी, चंद्रगिरी, माही कई क्षेत्रों में फ्रांसीसी कंपनियाँ स्थापित हुई। इस प्रकार, यद्यपि फ्रांसीसी देर से आए थे किन्तु उन्होंने भारत में तेजी से अपने प्रभाव क्षेत्र

का विस्तार किया। फिर भारत में ब्रिटिश के प्रतिद्वंदी के रूप में फ्रांसीसी का उद्‌भव हुआ तथा इसने कर्नाटक युद्ध की पृष्ठभूमि निर्मित कर दी। जैसा कि हम जानते हैं कि यूरोपीय कंपनियाँ भारत से जो वस्तुएं खरीदी, उसके बदले उन्हे देने के लिए वस्तुएँ नहीं थी, अतः आरंभ में उन्होने व्यापार की यह रकम यूरोप की कीमती धातु लाकर पूरा किया। यद्यपि अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार से भी वे कुछ मुनाफा प्राप्त करतीं, किंतु निवेश के लिए वह रकम अपर्याप्त थी। इस तथ्य ने भारत में यूरोपीय कंपनियों की राजनीतिक महत्वाकांक्षा को जागृत कर दिया।

भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना तथा भारतीय शक्तियों के विरुद्ध अंग्रेजी सफलता के कारण

ब्रिटेन द्वारा भारत की विजय उस प्रक्रिया का हिस्सा थी जिसने ब्रिटेन को विश्व के सर्वशक्तिशाली राष्ट्र के रूप में स्थापित किया। ब्रिटेन एक ऐसा देश था जो सफलतापूर्वक पुनर्जागरण, धर्म सुधार आन्दोलन, वैज्ञानिक एवं तकनीकी सुधार की प्रक्रिया से गुजर चुका था। वाणिज्यवादी प्रसार में वह फ्रांस जैसे देशों को भी पीछे छोड़ चुका था। मात्र ब्रिटेन ही नहीं बल्कि संपूर्ण यूरोप व्यवसायिक क्रांति के चरण से गुजरते हुए उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद के प्रभाव में विस्तारवादी नीति को क्रियान्वित कर रहा था। वास्कोडिगामा उस विस्तारवादी आन्दोलन का प्रतीक था। नए-नए व्यावसायिक मार्गों की खोज हो रही थी। जब यूरोप इस विकास की प्रक्रिया पूरी कर रहा था तो इसके ठीक विपरीत भारत में आर्थिक और राजनीतिक विकास की प्रक्रिया अवरुद्ध हो चुकी थी। भारत अभी भी मध्यकालीन मान्यताओं से ग्रस्त था और इसकी आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक व्यवस्था मध्ययुगीन मान्यताओं पर आधारित थी। मुगल साम्राज्य के पतनोपरांत भारत महज एक भौगेलिक अभिव्यक्ति रह गया था क्योंकि मुगल साम्राज्य के पतन के साथ ही साम्राज्य का आदर्श धराशायी हो गया था। मराठा जैसे नवोदित शक्ति से एक विशाल साम्राज्य निर्माण की अपेक्षा की जा सकती थी, किंतु मराठा परिसंघ आपसी फूट के कारण कमजोर पड़ गया था। जहाँ ब्रिटिश लोगों में देशभक्ति तथा राष्ट्रवाद की भावना प्रबल थी, वहीं भारतीयों का दृष्टिकोण क्षेत्रीय एवं संकीर्ण था।

ब्रिटिश विजय एक आधुनिक देश की सामंतवादी देश पर विजय के समान थी। ब्रिटेन ने अपने यहाँ सामंतवादी अनेकता को समाप्त कर स्वयं को एक ऐसे आधुनिक राष्ट्र के रूप में ढाल लिया था जो पूँजीवाद के उत्थान एवं विस्तार पर निर्भर था। जैसा कि आधुनिक राष्ट्रों के इतिहास से प्रमाणित होता है कि पूंजीवादी राष्ट्र सामंती राष्ट्र से सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक रूप से अधिक शक्तिशाली होते हैं क्योंकि ये सामंतवादी व्यवस्था की तुलना में उत्पादन के उच्च तकनीकी पर निर्भर होते हैं। सामंतवादी व्यवस्था की तुलना में पूंजीवादी राष्ट्रो में देशभक्ति तथा राष्ट्रीयता की भावना प्रबल होती है और राष्ट्रीय एकात्मकता, सहयोग की प्रकृति तथा व्यवस्था की शक्ति जैसे गुण पूर्ण विकसित होते हैं। संकुचित दृष्टिकोण के कारण ही भारतीय शासकों ने अपने पड़ोसी राज्यों को पराजित करने के लिए विदेशी शक्तियों से सहायता लेने में परहेज नहीं किया। भारतीय सैनिकों में अकुशलता का प्रदर्शन भी इसी व्यवस्था से जुड़ा हुआ है। अक्सर देखा गया कि जो भारतीय सैनिक ब्रिटिश कमांडर के नेतृत्व में महत्वपूर्ण युद्ध जीत लेता था वही भारतीय कमांडर के साथ छोटी-सी यूरोपीय सेना से पराजित हो जाता था।

क्षेत्रीय शासकों द्वारा ब्रिटिश विस्तार का जो भी प्रतिरोध किया गया वह एकीकृत नहीं था क्योंकि भारतीय राज्य क्षैतिज एवं उर्ध्वाधर रूपों में विभाजित थे। महज बक्सर के युद्ध को छोड़कर कभी भी भारतीय राज्य ब्रिटिश के विरूद्ध कोई संयुक्त मोर्चा नहीं बना सके।

THE STUDY
KARMANYEVADHIKARASTE MAA PHALESHU KADACHAN
An Institute for IAS

THE STUDY

(An Institute for IAS)

Divyam Educom Pvt. Ltd.

Our Destiny in Our Hands

HISTORY

By Manikant Singh

THE STUDY under the expert guidance of MANIKANT SINGH has continued its journey on the path of success.........

अभ्यर्थियो! मुख्य परीक्षा में वैकल्पिक विषयों (Optional Subjects) में प्रश्नों की प्रवृत्ति यह दर्शाती है कि आपकी सफलता में भविष्य में वैकल्पिक विषय की निर्णायक भूमिका होगी। वैकल्पिक विषयों में अत्यधिक स्तरीय प्रश्न पूछे जाने लगे हैं। अतः वैकल्पिक विषय के लिए दीर्घकालीन तैयारी की जरूरत है। इसलिए अब आवश्यक है कि प्रारम्भिक परीक्षा से पूर्व वैकल्पिक विषय की तैयारी का अधिकांश भाग पूरा हो चुका हो क्योंकि प्रारम्भिक परीक्षा के बाद यह संभव नहीं हो सकेगा।

बदले हुए परिदृश्य में इतिहास एक अति महत्वपूर्ण वैकल्पिक विषय के रूप में उभरा है। इसके निम्नलिखित कारण हैं। प्रथम, इसका सामान्य अध्ययन में बहुत बड़ा योगदान (मुख्य परीक्षा प्रथम पत्र में 100 से 110 अंक तथा प्रारंभिक परीक्षा में 32 से 34 अंक) है। दूसरे, यह विषय सरल एवं सुग्राह्य है। अन्त में, इसमें "THE STUDY" जैसे विश्वसनीय संस्थान का सहयोग प्राप्त है।

हमारी रणनीति किस प्रकार अन्य से अलग है?

प्रचलित रणनीति

1. इतिहास के अध्ययन का अर्थ लगाया जाता है अधिक-से-अधिक सूचनाओं एवं तथ्यों का संग्रह करना।
2. अध्यापन में टॉपिक की क्रमबद्धता का प्रायः निर्वाह नहीं किया जाता (गुप्तकाल के अध्यापन के पश्चात् मौर्यकाल का अध्यापन, प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् जर्मनी के एकीकरण का अध्यापन आदि इस क्रमबद्धता का उल्लंघन है।)
3. अभ्यर्थियों को इतिहास के अध्ययन में प्रचलित विभिन्न दृष्टिकोणों (इतिहास लेखन) से अवगत नहीं कराया जाता। अतः किसी जटिल प्रश्न पर अपना झुकाव (Stand) स्पष्ट करना उनके लिए संभव नहीं हो पाता।
4. समय की बचत को ध्यान में रखकर कक्षा में भी तथ्यों को प्वाईंट्स में प्रदर्शित किया जाता किंतु इस कारण से अभ्यर्थियों की टॉपिक पर पूर्ण समझ विकसित नहीं हो पाता।
5. लेखन कला का विकास नहीं हो पाता।

हमारी रणनीति

1. हमारे लिए इतिहास तथ्य (Fact) कम एवं विश्लेषण (Analysis) अधिक है।
2. हम तीन चरणों (Stages) में विषय की तैयारी को पूर्ण करते हैं। प्रथम चरण में हमारा बल विषय में छात्रों की दिलचस्पी एवं मौलिक समझ विकसित करने पर होता। इसलिए हम उन्हें निरन्तरता एवं परिवर्तन (Continuity and Changes) का ज्ञान देते।
3. द्वितीय चरण में हमारा बल इतिहास लेखन के ज्ञान (Knowledge of Historiography) पर होता है ताकि अभ्यर्थी स्तरीय प्रश्नों (Standard Questions) पर अपना झुकाव स्पष्ट कर सकें।
4. तीसरे चरण में लेखन शैली का विकास किया जाता है। इसके लिए हम अभ्यर्थियों को Thesis-based Writing का प्रशिक्षण देते हैं।

The most trusted name in History brings you

ONLINE CLASSES

(Hindi/English Medium)

By Manikant Singh

Features:-
- Online classes
- Study Material &Latest updates
- Answer writing practice and Tests
- Test Series

For videos visit
www.thestudyias.net

Correspondence Course

(Hindi/English Med.)

-Complete Study Material
-Personal guidance
-Answer writing practice and Tests

210, Virat Bhawan, IInd Floor, Near Post Office, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-9
www.thestudyias.net :: Email: thestudyias@gmail.com f /thestudyias
Ph. : 011-27653672, 42870015, 9999278966, 9999516388